

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 12 अध्याय 6: परीक्षित का परमधाम-गमन

14 September 2026



सर्प के विष से देह भस्म होने की चिन्ता किए बिना, निर्भय राजा परीक्षित चेतना को सीधे परब्रह्म पर केन्द्रित कर लेते हैं; उनके पुत्र जनमेजय की वेदना क्रमशः बोध में परिणत होती है, और तत्पश्चात् सूत जी इस रहस्य को उद्घाटित करते हैं कि मूलतः एक अखण्ड वेद कैसे अनेक शाखाओं में विस्तारित हुआ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। द्वादश स्कन्ध के इस षष्ठ अध्याय में वह महान् कथा जो भागवत के आरम्भ में खुली थी अपने शान्त समापन तक पहुँचती है: राजा परीक्षित, सात दिनों में सम्पूर्ण शास्त्र सुनकर, बिना किंचित् भय के अपनी देह त्याग देते हैं, परम में लीन। फिर भी अध्याय उनके परमधाम-गमन के साथ समाप्त नहीं होता। यह उनके पुत्र जनमेजय के प्रचण्ड शोक और उससे उपजे सर्प-यज्ञ में से, बृहस्पति के उस बुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश में से जो उस शोक को शान्त करता है, और भगवान् विष्णु की अचिन्त्य माया के एक चिन्तन में होता हुआ आगे बढ़ता है। तब, ऋषि शौनक के एक प्रश्न के उत्तर में, सूत गोस्वामी एक नए एवं पावन विषय की ओर मुड़ते हैं — कि किस प्रकार ब्रह्मा के हृदय में उत्पन्न एक आदि नाद ओंकार वेदों में उन्मीलित हुआ, और किस प्रकार वेदव्यास ने उस एक असीम ज्ञान को उन अनेक शाखाओं में विभक्त किया जिनसे वह सुरक्षित रहा। यह अन्तों और निरन्तरताओं का अध्याय है: एक आत्मा अपने स्रोत में लौटती है, और शाश्वत शब्द सुरक्षित आगे बढ़ता है।

अध्याय-पारेचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 12 (द्वादश स्कन्ध — अन्तिम स्कन्ध)
- अध्याय: 6 (षष्ठ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: परीक्षित का परमधाम-गमन तथा वेद की शाखाएँ
- मुख्य वक्ता: सूत गोस्वामी, नैमिषारण्य के ऋषियों को कथा सुनाते हुए; इसके भीतर राजा परीक्षित के अन्तिम वचन तथा बृहस्पति का उपदेश
- मुख्य श्रोता: नैमिषारण्य के ऋषिगण, शौनक के नेतृत्व में
- मुख्य स्थान: नैमिषारण्य का वन-आश्रम; तथा कथा के भीतर गंगा का तट जहाँ परीक्षित देह त्यागते हैं
- मुख्य विषय-वस्तु: राजा परीक्षित का निर्भय परमधाम-गमन, जनमेजय का सर्प-यज्ञ तथा बृहस्पति का उपदेश, भगवान् विष्णु की माया, तथा ओंकार की उत्पत्ति एवं वेदों का विभाजन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 12, अध्याय 6, श्लोक 1-80
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

एक निर्भय विदाई

श्रीशुकदेव की अन्तिम शिक्षा सुनकर, राजा परीक्षित जुड़े हाथों से ऋषि के चरणों में नमन करते और पूर्ण कृतार्थता के वचन कहते हैं। उन्हें श्रीहरि, जिनका न आदि है न अन्त, तथा उन्हें पाने के उपाय के दर्शन कराए गए हैं; उनका प्रयोजन, वे कहते हैं, सिद्ध हो गया है। अब उन्हें सर्प तक्षक या मृत्यु के किसी अन्य दूत का भय नहीं, क्योंकि वे अब ब्रह्म के साथ एकता की निर्भय, आनन्दमय अवस्था में प्रवेश कर चुके हैं।

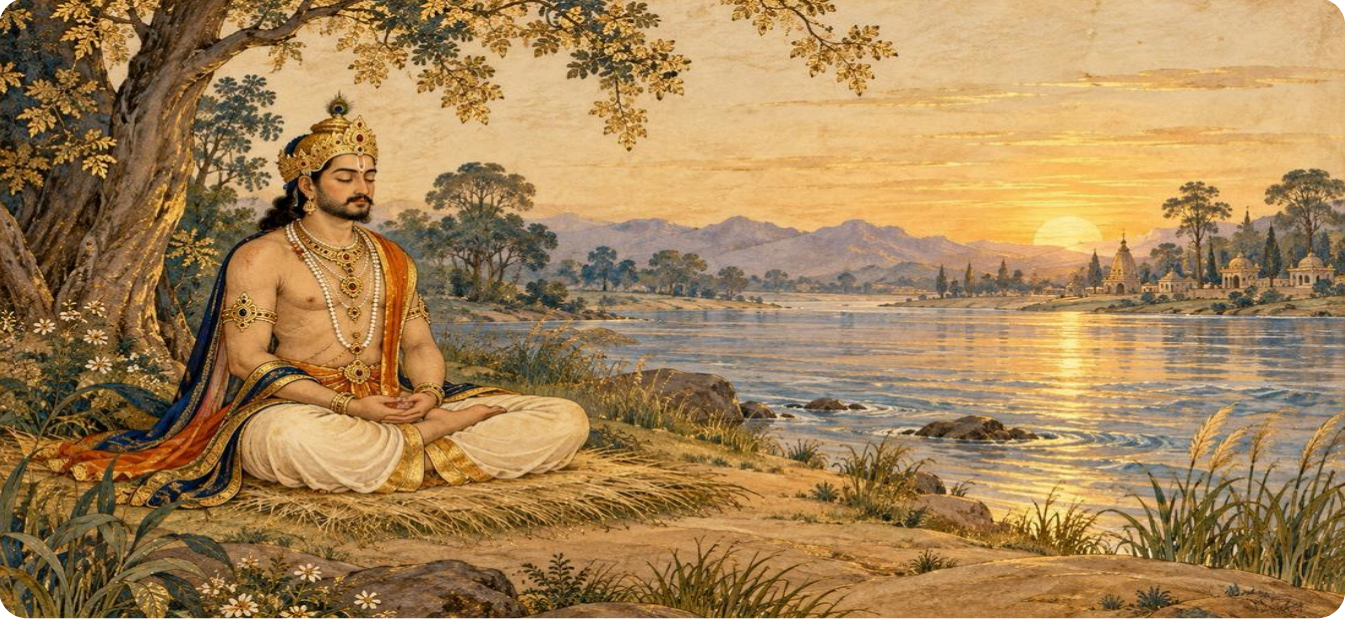
भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ।

प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

bhagavaṁś takṣakādibhyo mṛtyubhyo na bibhemy aham praviṣṭo brahma nirvāṇam abhayaṁ darśitaṁ tvayā

अर्थ: हे भगवन्, अब मुझे तक्षक या मृत्यु के किसी अन्य कारण का भय नहीं, क्योंकि मैं उस निर्भय, आनन्दमय ब्रह्म में प्रवेश कर चुका हूँ जो आपने मुझे दिखाया। (स्कन्ध 12, अध्याय 6, श्लोक 5)

ऋषि से अनुमति माँगकर, परीक्षित संकल्प करते हैं कि वे अपनी इन्द्रियों तथा वाणी को संयमित करके, तृष्णा-रहित मन को भगवान् विष्णु में स्थापित कर देह त्याग देंगे। उनका अज्ञान, बीज सहित, ज्ञान तथा साक्षात्कार से भस्म हो चुका है। इस प्रकार सम्मानित तथा पूजित होकर, श्रीशुकदेव विदा लेते और अन्य तपस्वियों के साथ प्रस्थान करते हैं। तब वह राजर्षि, तर्क के बल से अपने मन को आत्मा से जोड़कर, गंगा के तट पर कुश के आसन पर उत्तराभिमुख बैठते हैं और — समस्त संशय से मुक्त, ब्रह्म में एक, आसक्ति से परे — वृक्ष के तने-सा निश्चल होकर परम का चिन्तन करते हैं।



समस्त संशय तथा आसक्ति से मुक्त, राजा परीक्षित गंगा के तट पर कुश के आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर अपने मन को परमात्मा में लीन कर देते हैं, वृक्ष के तने-सा निश्चल
(श्लोक 9-10)।

सर्प और भस्म

इसी बीच तक्षक, क्रुद्ध ब्राह्मण-बालक के शाप से भेजा गया, राजा की ओर दौड़ता है। मार्ग में उसे कश्यप नामक एक ब्राह्मण मिलता है, जो विष का प्रतिकार करने में निपुण था; सर्प उसे धन से रिझाकर लौटा देता है, फिर ब्राह्मण का वेश धारण कर राजा के निकट आकर उसे डँस लेता है। सर्प के विष की अग्नि से उस राजर्षि की देह — जो पहले से ही ब्रह्म में लीन थी — सबके देखते-देखते तत्काल भस्म हो जाती है। पृथ्वी तथा स्वर्ग में एक भयंकर हाहाकार उठता है; देव, दैत्य तथा मनुष्य विस्मित रह जाते हैं; दुन्दुभियाँ स्वयं बज उठती हैं, गन्धर्व तथा अप्सराएँ गान करते हैं, और देवगण पुष्प-वर्षा करते हैं। इस प्रकार राजा परीक्षित का परमधाम-गमन होता है — मृत्यु के शिकार के रूप में नहीं, अपितु एक मुक्त आत्मा के रूप में जिसकी देह का अन्त अमर आत्मा को छू भी नहीं सका।

जनमेजय का यज्ञ तथा बृहस्पति का उपदेश

जब परीक्षित के पुत्र जनमेजय सुनते हैं कि उनके पिता तक्षक द्वारा भस्म कर दिए गए, तब वे शोक और क्रोध से भर उठते हैं। ब्राह्मण ऋत्विजों के साथ वे एक महान् सर्प-यज्ञ आरम्भ करते हैं, विधिपूर्वक सर्पों की यज्ञाग्नि में आहुति देते हुए। सर्पों को जलते देख भयभीत तक्षक इन्द्र की शरण में भाग जाता है, और इन्द्र उसे आश्रय देते हैं। जब राजा पूछते हैं कि सर्पों में नीचतम तक्षक क्यों नहीं गिर रहा, तब ऋत्विज बताते हैं; और बुद्धिमान् जनमेजय उत्तर देते हैं कि तब तक्षक को इन्द्र सहित ही आहूत किया जाए। ब्राह्मणों के प्रबल आवाहन से इन्द्र अपने विमान सहित अपने स्थान से विचलित हो उठते हैं।

तब देवगुरु बृहस्पति ऐसे वचनों से हस्तक्षेप करते हैं जो शोक को ज्ञान में बदल देते हैं। तक्षक, वे कहते हैं, मारा नहीं जा सकता, क्योंकि उसने अमृत पिया है और अमर है। और गहरे में: प्रत्येक प्राणी का जीवन-मरण, तथा परलोक में उसकी गति, केवल उसके अपने कर्मों से निश्चित होती है; कोई किसी अन्य को उसके अपने कर्म के अतिरिक्त सुख या दुःख नहीं दे सकता।

सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ।

पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥

sarpa-caurāgni-vidyudbhyaḥ kṣut-tṛd-vyādhy-ādibhir nṛpa pañcatvam ṛcchate jantur bhuṅkta ārabdha-karma tat

अर्थ: चाहे सर्प, चोर, अग्नि या विद्युत् से, अथवा भूख, प्यास तथा रोग से, हे राजन्, जब कोई प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है, तब वह केवल उस कर्म का फल भोगता है जो फल देना आरम्भ कर चुका है। (स्कन्ध 12, अध्याय 6, श्लोक 26)

इस दुर्भावना से प्रेरित यज्ञ को रोक दिया जाए, बृहस्पति आग्रह करते हैं, क्योंकि इसमें जले सर्प निर्दोष थे। ऋषि के उपदेश का सम्मान करते हुए, जनमेजय “तथास्तु” कहते हैं, सर्प-यज्ञ से विरत होते और बृहस्पति की पूजा करते हैं।



जनमेजय के यज्ञ की ज्वालाओं में सर्पों के गिरते समय, देवगुरु बृहस्पति राजा को उपदेश देते हैं कि प्रत्येक प्राणी केवल अपने कर्म का फल भोगता है — और यज्ञ रोक दिया जाता है (श्लोक 16-27)।

भगवान् की माया

सूत यहाँ रुककर सम्पूर्ण प्रसंग के नीचे छिपे रहस्य पर चिन्तन करते हैं। ऐसी है, वे कहते हैं, भगवान् विष्णु की अचिन्त्य माया, जिसके वश में प्राणी — जो स्वयं भगवान् के अंश हैं — तीनों गुणों से उपजी वासनाओं से प्रेरित होकर परस्पर विरोध में पड़ जाते हैं। फिर भी यही माया, जब आत्मा का सच्चा अन्वेषण किया जाता है, तब भगवान् के समक्ष निर्भय होकर खड़ी नहीं रह सकती; भगवान् के सम्बन्ध में न कोई कर्म है, न फल, न अहंकार, न विरोध। “मैं” तथा “मेरा” की तरंगों को त्यागकर, ज्ञानी को केवल आत्मा में रमण करना चाहिए। वे ही भगवान् विष्णु की परम अवस्था को प्राप्त करते हैं जो देह तथा गृह से मिथ्या तादात्म्य से मुक्त हैं; इस नश्वर देह के लिए कठोर वचन भी सहने चाहिए, किसी का अनादर न करें, और किसी से शत्रुता न करें। तब सूत अपना निजी नमन अर्पित करते हुए प्रकट करते हैं कि उन्होंने यह शास्त्र किस प्रकार प्राप्त किया।

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।

यत्पादाम्बुरुहध्यानात् संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥

namo bhagavate tasmai kṛṣṇāyākuṇṭha-medhase yat-pādāmburuha-dhyānāt saṁhitām adhyagām imām

अर्थ: उन अकुण्ठित बुद्धि वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार, जिनके चरण-कमलों के ध्यान से मैंने इस महान् संहिता का अध्ययन किया। (स्कन्ध 12, अध्याय 6, श्लोक 35)

ओंकार की उत्पत्ति तथा एक वेद

अब ऋषि शौनक एक नया प्रश्न पूछते हैं: पैल तथा अन्य महान् आचार्यों, वेदव्यास के शिष्यों ने, वेदों को कितनी शाखाओं में विभक्त किया? सूत उत्तर में वेद को उसके मूल स्रोत तक ले जाते हैं। ध्यान में स्थिर हुए ब्रह्मा के हृदय-गुहा से एक सूक्ष्म नाद उत्पन्न हुआ — वह अनाहत आन्तरिक नाद जिसे योगी कान बन्द करके तथा मन को एकाग्र करके अनुभव करते हैं, और जिससे वे मन की मलिनताओं को धोकर मुक्ति पाते हैं। उस नाद से त्रिवृत् (अ, उ, म) ओंकार प्रकट हुआ, स्वयं-प्रकट तथा स्वयं-ज्योति, परमात्मा ब्रह्म का ही प्रतीक।

ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ।

यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

tato 'bhūt tri-vṛd omkāro yo 'vyakta-prabhavaḥ sva-rāṭ yat tal liṅgaṁ bhagavato brahmaṇaḥ paramātmanaḥ

अर्थ: उस नाद से त्रिवृत् ओंकार प्रकट हुआ, जो अव्यक्त-मूल तथा स्वयं-ज्योति है, और जो परमात्मा ब्रह्म का प्रतीक है। (स्कन्ध 12, अध्याय 6, श्लोक 39)



पावन ओंकार से एक असीम वेद उन्मीलित होता है, और ऋषि वेदव्यास उसे उसके चार महान् रूपों में विभक्त करके प्रत्येक को सुरक्षा हेतु एक योग्य शिष्य को सौंपते हैं
(श्लोक 37-53)।

ओंकार से समस्त वैदिक शब्द-राशि विस्तृत हुई, और करुणामय वेदव्यास ने, युग के मनुष्यों को अल्पायु तथा दुर्बल-स्मृति देखकर, उस एक विशाल वेद को चार में विभक्त किया, ताकि वह सुरक्षित तथा सुबोध रहे। उन्होंने ऋक्-मन्त्र अपने शिष्य पैल को, यजुर्-सूत्र वैशम्पायन को, साम-गान जैमिनि को, और अथर्व-मन्त्र सुमन्तु को सौंपे; और इनमें से प्रत्येक ने, फिर, अपने भाग को अपने शिष्यों में विभक्त किया, शाखा-दर-शाखा, जब तक कि एक ज्ञान अनेक हाथों में सुरक्षित न हो गया।

याज्ञवल्क्य और सूर्यदेव

इन परम्पराओं में सूत एक विलक्षण कथा सुनाते हैं। वैशम्पायन के एक शिष्य याज्ञवल्क्य ने, अपने गुरु से मतभेद के पश्चात्, यजुर्वेद का सीखा हुआ भाग लौटा दिया और ऐसी श्रुतियाँ पाने का संकल्प किया जो पहले किसी को ज्ञात न थीं। श्रद्धापूर्वक उन्होंने वेदों के स्वामी सूर्यदेव की एक भव्य स्तुति से उपासना की — वह स्तुति जो पावन गायत्री के ही अर्थ को उघाड़ती है, उन भगवान् की महिमा गाती हुई जो समस्त प्राणियों के भीतर आत्मा के रूप में निवास करते और बाहर काल-चक्र के रूप में घूमते हैं, जो संसार को अज्ञान के अन्धकार से जगाते और उसे प्रतिदिन तीन बार परम की उपासना की ओर मोड़ते हैं। प्रसन्न होकर सूर्यदेव ने अश्व का रूप धारण किया और याज्ञवल्क्य को यजुर्वेद के अब तक अज्ञात भाग सिखाए, जिनसे उन्होंने वाजसनेयी नामक पन्द्रह शाखाएँ संकलित कीं। साम तथा अथर्व की परम्पराएँ भी अनेक श्रद्धालु ऋषियों से शाखाबद्ध हुई, जिससे सम्पूर्ण वेद संसार के कल्याण हेतु सुरक्षित हो गया।



ऋषि याज्ञवल्क्य सूर्यदेव की एक स्तुति से उपासना करते हैं जो गायत्री के अर्थ को उघाड़ती है; प्रसन्न होकर सूर्यदेव अश्व के रूप में प्रकट होकर उन्हें यजुर्वेद के पहले अज्ञात भाग प्रदान करते हैं (श्लोक 66-74)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भली-भाँति सुना गया जीवन निर्भय मृत्यु बनाता है। भागवत सुनकर तथा आत्मा का साक्षात्कार कर, परीक्षित सर्प का बिना भय के सामना करते हैं; देह का अन्त ब्रह्म में स्थित आत्मा को छू नहीं सकता (श्लोक 5-13)।
2. प्रत्येक प्राणी अपने ही कर्म का फल भोगता है। बृहस्पति का उपदेश जनमेजय को प्रतिशोध से मुक्त करता है: कोई सर्प, चोर या अग्नि मृत्यु का सच्चा कारण नहीं — प्रत्येक प्राणी केवल अपने कर्म का फल पाता है (श्लोक 24-27)।
3. शान्ति “मैं” और “मेरा” के त्याग से आती है। विष्णु की परम अवस्था उन्हें प्राप्त होती है जो देह तथा गृह से मिथ्या तादात्म्य से मुक्त हैं, जो कठोर वचन सहते और किसी से शत्रुता नहीं रखते (श्लोक 32-34)।
4. शाश्वत शब्द सावधानी से सुरक्षित रखा जाता है। ब्रह्मा के हृदय में उत्पन्न ओंकार से, वेदव्यास ने दुर्बल-स्मृति युग पर करुणा से एक वेद को शाखाओं में विभक्त किया — यह स्मरण कि पावन ज्ञान एक धरोहर है जिसे रक्षित तथा अग्रसारित करना है (श्लोक 37-53)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह अध्याय दो ऐसी वस्तुओं को जोड़ता है जिन्हें हम साथ पाने की अपेक्षा शायद न करें: एक मृत्यु और एक ग्रन्थागार। परीक्षित का परमधाम-गमन हमें सम्पूर्ण भागवत का फल एक अकेली आत्मा में पकते हुए दिखाता है — एक ऐसा मनुष्य जो, सचमुच सुन लेने पर, अपनी देह को उतनी ही सहजता से त्याग सकता है जितनी सहजता से बोझ रख देना। और फिर, प्रायः उसी श्वास में, सूत यह बताने की ओर मुड़ते हैं कि वेद स्वयं किस प्रकार, शाखा-दर-शाखा, श्रद्धालु शिष्यों के हाथों सुरक्षित रखा गया। यह सम्बन्ध शान्त रूप से सुन्दर है। जिसने परीक्षित को बिना भय मरने दिया वह था ज्ञान — और ज्ञान केवल इसलिए टिकता है क्योंकि किसी ने उसे आगे ले जाने का श्रम किया। जब भी हम एक श्लोक सुनते, ओंकार का जप करते, या किसी शिक्षा को दूसरे को सौंपते हैं, हम उसी दीर्घ परम्परा में खड़े होते हैं जिसका सूत वर्णन करते हैं, ब्रह्मा के

हृदय से व्यास की लेखनी तक, और नैमिषारण्य के ऋषियों तक, और आगे हम तक। बृहस्पति का उपदेश चित्र को पूर्ण करता है: चूँकि हम में से प्रत्येक केवल अपने ही कर्म का फल भोगता है, अतः न कोई शत्रु दोषी है, न कोई प्रतिशोध शेष — केवल आत्मा जाननी है, और शब्द सुरक्षित रखना है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज इस अध्याय के दो उपहारों का सम्मान कीजिए — एक निर्भय हृदय और एक सुरक्षित शब्द। शान्त बैठिए और पावन अक्षर “ॐ” का कुछ बार धीरे-धीरे जप कीजिए, यह स्मरण करते हुए कि यह ब्रह्मा के हृदय में परम के प्रतीक-रूप में उत्पन्न हुआ। फिर परीक्षित की निर्भयता का स्मरण कीजिए, और किसी अन्य के प्रति धारण किया हुआ एक छोटा-सा दुर्भाव कोमलता से छोड़ दीजिए, बृहस्पति की इस शिक्षा को स्मरण करते हुए कि प्रत्येक प्राणी केवल अपने कर्म का फल भोगता है। अन्त में, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” का जप कीजिए, ऋषियों की उस दीर्घ परम्परा के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करते हुए जिनके माध्यम से यह ज्ञान आप तक पहुँचा है। इस छोटे से अभ्यास में आप अध्याय की सम्पूर्ण विरासत पाते हैं: भय से मुक्ति, दोष से मुक्ति, और शाश्वत शब्द के प्रति श्रद्धा।

उपसंहार

द्वादश स्कन्ध का षष्ठ अध्याय भागवत की आरम्भिक कथा को उसके देदीप्यमान समापन तक ले जाता है और एक नई कथा खोलता है। राजा परीक्षित, अपना प्रयोजन सिद्ध और भय विलीन होने पर, अपनी आत्मा को ब्रह्म में लीन कर देते हैं, भले ही तक्षक का विष उनकी देह को भस्म कर दे, जब स्वर्ग एक मुक्त आत्मा पर पुष्प बरसाता है। उनके पुत्र जनमेजय का शोक एक सर्प-यज्ञ प्रज्वलित करता है, किन्तु बृहस्पति की बुद्धि — कि प्रत्येक प्राणी केवल अपने कर्म का फल भोगता है — उसे शान्त कर देती है, और सूत भगवान् की अचिन्त्य माया पर चिन्तन करते हैं। तब, ब्रह्मा के हृदय में उत्पन्न पावन नाद ओंकार से, एक शाश्वत वेद उन्मीलित होता है, और वेदव्यास उसे उसकी शाखाओं में विभक्त करके प्रत्येक को एक योग्य शिष्य को सौंपते हैं। मृत्यु और निरन्तरता यहाँ एक ही सत्य के रूप में मिलती हैं: आत्मा अपने स्रोत में लौटती है, और पावन शब्द सुरक्षित आगे बढ़ता है, ब्रह्मा के हृदय से नैमिषारण्य के ऋषियों तक, और हम तक जो उसे अब भी सुनते हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), द्वादश स्कन्ध, षष्ठ अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ॰ श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-12-adhyay-6-parikshit-paramdham-veda-shakhaen-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

